जय महावीर

(महाकाव्य)

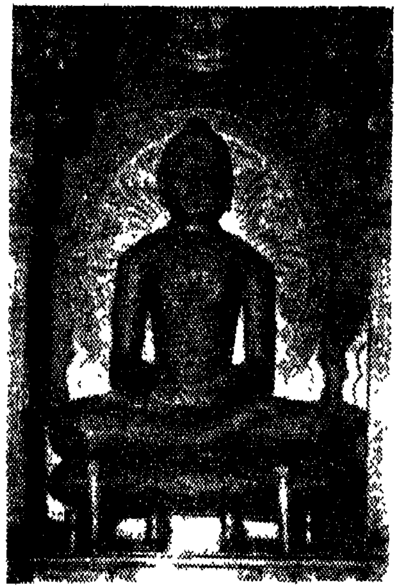
माणकचन्द रामपुरिया

विकास प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
मामा-भान्जा की दरगाह
फड़ बाजार, बीकानेर (राज०)

विकास प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
मामा-भान्जा की दरगाह
फड़ बाजार, बीकानेर : मूल्य : 80.00 रुपये
द्वारा प्रकाशित
प्रथम संस्करण, महावीर जयन्ती
22 अप्रैल '86
नागरी प्रिण्ट्र्स, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

JAI MAHAVEER (EPIC)
by Manak chand Rampuria
Publisher : Vikas Printers & Publishers
Mama-Bhanja Ki Dargah
Phad Bajar, Bikaner (Rajasthan)
First Edition Mahaveer Jayanti-22nd April '86
Price Rs 80.00, Printed by Nagri Printers

जय महावीर



तेरा ही 'जय महावीर' मैं-
तुझे समर्पित करता।
अपना सुख-दुख, विजय-पराजय-
जीवन अर्पित करता॥

—माणकचन्द रामपुरिया

आत्म-भाव

तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर के तपोनिष्ठ-महा समुद्रवत् जीवन को पढ़कर, दृष्टि के सम्मुख वही अपार महासिन्धु लहरा उठता है; जिसका न ओर है; न छोर। अनन्त, सीमाहीन'''जल-राशि। केवल जल-राशि।'''और उसकी उच्छल अगाध तरंगें।

भगवान् श्री का जीवन साधना के उस पुञ्जीभूत उन्नत शिखर-सा है; जहाँ पहुँचना किसी भी साधारण मनुष्य के लिए अति दुष्कर है; फिर मेरे जैसा सभी तरह से अल्पज्ञ, साधन-विहीन प्राणी उस शिखर की कल्पना भी कर ले; तो यह उसके पूर्व जन्म का पुण्य ही कहा जाएगा।

'जय महावीर' आपके सम्मुख है।

कैसा है ? मैं नही कह सकता। अपनी ओर से मैं तो इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि तपः मूर्ति भगवान् श्री के तेजोमय जीवन के विभिन्न अंशों का स्पर्श-मात्र ही इस पुस्तक मे किया गया है। उस अगाध महासिन्धु को पूर्ण रूप में भला किसने रेखांकित, शब्दांकित किया है ? अथाह सागर लहरा रहा है—तट पर खड़े प्राणी अपने-अपने पात्रानुसार जल-राशि ग्रहण करते हैं। किन्तु, किसी ने सर्वांश में सिन्धु को ग्रहण किया? कौन कर सकता है? तीर्थंकर भगवान् महावीर अथाह, अनन्त पारावार है। इनके जीवन के विभिन्न अंगों को एक नजर देख लेना भी सबके वश की बात नहीं। जो भी इस ओर दृष्टिपात करता है—वह कभी एक पक्ष; कभी दूसरा पक्ष—सम्पूर्ण रूप में किसने देखा ? अथाह पयोधि को किसने बाँधा है ?

प्रस्तुत काव्य में जीवन-पक्ष ही प्रधान है। सैद्धान्तिक पक्ष स्पर्श-मात्र ही है। कारण—सैद्धान्तिक पक्ष अभेदकारी है। सभी तीर्थंकरों के साथ सैद्धान्तिक बातें एक ही रही हैं—उनमें भेद नहीं है। किन्तु, जीवन-पक्ष में भेद रहा है। जिस प्रकार आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव के तपोनिष्ठ जीवन की तुलना दयामूर्ति भगवान् नेमिनाथ से अथवा किसी अन्य से नहीं की जा सकती; इसी प्रकार 24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर के तपस्यामय जीवन की समकक्षता, दूसरे से नहीं हो सकती।

वर्धमान की तपस्या उनकी तपस्या थी। साधना के मार्ग में उन्होंने जो परिसय सहे वे उनके थे। उन अनुभवों की तुलना दूसरे से नही की जा सकती। जीवन-पक्ष सदा भेदमय ही रहा है।

ग्रन्थ की रचना भी एक संयोग ही है। तीर्थंकर भगवान् महावीर का प्रसंग चल उठा था। उनकी अथाह-अगाध तपस्या-निर्भयता आदि की चर्चा चल रही थी। सहसा मन में आया, भगवान् श्री का जीवन-चरित लिखा जाय। इनके जीवन-चरित ऐसे तो बहुत है, किन्तु काव्य-रूप में मुझे नही मिले। और फिर मै जो लिखने बैठा; पुस्तक समाप्त करके ही उठा। लगा उन दिनों भगवान् प्रतिक्षण मेरी दृष्टि के सम्मुख रहे है। ऐसा भी लगा है कि उन्होने स्वयं लिख लिया है—बात भी सही है—मै तो, निमित्त मात्र ही हूँ। वे जिस रूप में प्रेरित करें मैं प्रस्तुत हूँ।

अन्त में—जिन लोगों से पुस्तक-प्रकाशन मे थोडी भी सहायता मिली है, उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर को हार्दिक कोटानुकोटि वन्दन !!

॥ शुभास्तु ॥

रामपुरिया भवन,
बीकानेर (राज०)
महावीर जयन्ती, 22 अप्रैल 1986

--माणकचन्द रामपुरिया

अनुक्रमणिका

जय महावीर

वन्दना

देव दयामय करुणा सागर-
सकल सृष्टि है तेरा अनुचर ।।
ज्ञानमयी तब ज्योति विमल से-
उज्ज्वल भूतल शुभ्र कमल से ।

दया करो अब तम मिट जाये-
कलुष न मन में कुछ रह पाये।
शुभ्र आत्म-दर्शन का क्षण हो-
पावन भूतल का कण-कण हो।

नमन तुम्हें करता हूँ प्रतिपल-
तेरी करुणा मेरा सम्बल।
हो संकल्प हृदय का पूरा-
रहे न कोई भाव अधूरा।

चरणों पर मैं नत-मस्तक हूँ-
तेरे दर्शन का चातक हूँ।
तेरा जीवन पावन धारा-
धन्य हुआ पा भूतल सारा।

पूर्ण कामना हो अन्तर की-
शक्ति जगे नव मेरे स्वर की।
देव दयामय करुणा सागर-
सकल सृष्टि है तेरा अनुचर।।

प्रथम सर्ग

प्रभु की लीला बड़ी गहन है-
कितना चंचल मानव मन है।
जहाँ प्रेम की धार चाहिए-
करुणा अपरम्पार चाहिए।

वहाँ द्वेष-हिंसा जगती है-
अशुभ घृणा मन में पगती है।
तप का निर्मल भाव नहीं है-
संयम-शान्त-प्रभाव नहीं है।

शुद्ध तत्व से हीन हृदय में-
सत्व गुणों के निर्मम क्षण में।
भव को कैसे शान्ति मिलेगी-
ज्ञान ज्योति की प्रभा खिलेगी ?

कैसे कोई मन बिहँसेगा-
कैसे पुण्य विभव का लेगा ?
सोच, धरित्री अकुलाती है-
समझ नही कुछ भी पाती है।

तभी अचानक दिव्य गगन से-
ज्योति फूटती चेतन मन से।
कोई मार्ग दिखा जाता है-
सुन्दर विश्व बना जाता है।

ज्ञान चेतना का जगता है-
भुवन प्रकाशित-सा लगता है।
द्वेष-घृणा सब धुल जाते हैं-
द्वार पुण्य के खुल जाते हैं।

मानव-मानव बनने लगता-
ज्ञान हृदय में जगने लगता।
लेकिन यह भी तब सम्भव है-
होता पावन नर उद्भव है।

और नहीं तो कोई कैसे-
धो सकता है अन्तर कैसे?
ऐसे ही जब घटा घिरी थी-
सुख की सारी घड़ी फिरी थी।

हिंसा का साम्राज्य बिछा था-
मन में निर्धन भाव छिपा था।
मानव-दानव से लगते थे-
अच्छे भाव नहीं जगते थे।

संयम की तो बात न पूछो-
कैसी थी वह रात न पूछो।
ज्ञान तपस्या सब दूभर थे-
तिमिराच्छन्न-सघन घर-घर थे।

लोभ ग्रसित धरती रोती थी-
पूरी साध नहीं होती थी।
दीन-हीन सब नारी-नर थे-
दुःख से पीड़ित अन्तरतर थे।

तभी किरण-सा कोई आया-
भव को निर्मल शुभ्र बनाया।
सब कहते वे तीर्थंकर थे-
ज्ञान-किरण नव ज्योति प्रखर थे।

नयी साधना जग में जागी-
दुःख की रजनी तत्क्षण भागी।
यही साधना उज्ज्वल होकर-
भव को ही कल्मष से धोकर।

तेजपुञ्ज हो मूर्त्त रूप में-
तीर्थकर के ही स्वरूप में।
मिली जगत को निर्मल बनकर-
दिव्य प्रभा-सा पल-पल भास्वर।

आकर जग को मार्ग दिखाया-
भव के तम को दूर भगाया।
जग की पावन-पुण्य भूमि पर-
सत्य-तपस्या रूप उतर कर

आत्म-ज्ञान कल्याण बताते-
जन-जन को हैं सुखी बनाते।
इनके निर्मल पुण्योदय से-
तम पर अविरल ज्योति-विजय से।

भव को निश्चय मान हुआ है-
जन-जन का कल्याण हुआ है।
हुई सृष्टि पर वृष्टि विभव की-
ज्योति जगी नवभव उद्भव की॥

द्वितीय सर्ग

पुण्यमयी यह धरती जिस पर-
आते देव महान।
अपनी दिव्य प्रभा से भव का-
करते हैं कल्याण ॥

जन्म ग्रहण करता है प्राणी-
भूपर बारम्बार।
अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है, जिससे-
होता है उद्धार।।

विमल मोक्ष के तत्व धरा पर-
कर सकते सब प्राप्त।
पुण्य-बीज, जो पड़ता, होता-
फिरवहनही समाप्त।।

जनम-जनम वह चाहे भटके-
रहता है निर्भीक।
कभी नहीं वह विचलित होता-
मिलती जिसको लीक।।

सत्पथ की यह लीक प्रबल है-
मानव का आदर्श।
इससे ही होता है निश्चय-
भव का शुभ उत्कर्ष।।

धन्य वही है, जिसको मिलती-
ऐसी निर्मल जोत।
प्रेम भाव में रहता है वह-
प्राणी ओत-प्रोत॥

सभी जीव एक सदृश हैं-
नही किसी में भेद।
एक तरह ही सभी मनाते-
हर्ष-शोक औ खेद॥

मानव को उन्नत करती है-
और न कोई चीज।
एक मात्र है जहाँ ज्ञान का-
निर्मल सात्विक बीज॥

उसके ऊपर कभी न पड़ता-
अघ का कुटिल प्रभाव।
सदा अनघ है, सत्यरूपमय-
उसका स्वयं स्वभाव॥

महावीर ने भी पाये थे-
भव में जन्म अनेक।
लेकिन मन में सदा टिकी थी-
विमल सत्य की टेक।।

जाने कितने जन्म हुए थे-
पाये कितने क्लेश।
किन्तु हृदय में रहा पुण्य ही-
अंतिम क्षण तक शेष।।

जन्म पचीसों का धरती पर-
आया है उल्लेख।
उनके सब कृत्यों का भू पर-
मिलता है अभिलेख।।

एक बार पर मन में जो था-
जागा दिव्य प्रकाश।
नव-नव वह नित बढ़ता आया-
हुआ न उसका नाश।।

यही भेद है, जब जगता है-
सत्य किरण का रूप।
नित-नित खिलता, पर असत्य का-
हो जाता विद्रूप॥

निर्मल बीज पड़ा था मन में-
निर्मल था संस्कार।
फूट पड़ा वह अनायास ही-
बनकर पुण्य अपार॥

वैमानिक-निकाय में जब थे-
देव रूप में लीन।
सोचा, धरती पर आने का-
लेकर जन्म नवीन॥

वैशाली के वृषभदत्त की-
पत्नी प्रभु-लवलीन।
देवानन्दा की कुक्षी में-
होकर परम प्रवीण॥

उतरे भव में, भव से निर्मल-
बनकर दिव्य प्रकाश।
रोम-रोम में देवानन्दा-
के जागा उल्लास॥

सहसा चौदह स्वप्न जगे थे-
भाव भरे भरपूर।
वृषभदत्त थे, सुनकर बोले-
कष्ट हुआ सब दूर॥

तुमने देखे स्वप्न भामिनी-
पुण्यमयी अभिभूत।
होगा सभी गुणों से भूषित-
कोई दिव्य सपूत॥

× × ×

किन्तु सभी का स्वप्न धरा पर-
कब होता है पूर्ण।
विघ्न अनेकों आकर करते-
प्रतिक्षण चकना चूर॥

चिन्तित इन्द्र हुए; यह होगी-
भू पर कैसी बात।
किसी दीन ब्राह्मण के घर में-
बिहँसे यह जल जात॥

नहीं, नहीं वे क्षत्रिय के घर-
लेंगे जन्म उदार।
तभी करेंगे पाप-पुञ्ज इस-
धरती का उद्धार॥

× × ×

क्षत्रिय कुण्ड नगर के राजा-
पुण्यव्रती सिद्धार्थ।
सद्धर्मों में लीन भुवन में-
रहते सदा परार्थ॥

इनकी रानी त्रिशला भी थी-
जाग्रत ज्ञान-विवेक।
सदा भजन करती थी धर कर-
मन में प्रभु की टेक॥

गर्भवती वह हर क्षण प्रभु के-
भावों में तल्लीन।
प्रतिक्षण पूजा करती थी नित-
भर कर भाव नवीन।।

दूत बुलाकर कहा इन्द्र ने-
जाकर आज तुरन्त।
दोनों गर्भों का परिवर्तन-
कर दो प्यारे भंत।।

हरी णैगमेषी ने आकर-
देवानन्दा पास।
गर्भ लिया-फिर त्रिशला के घर-
आये वे सोल्लास।।

गर्भ-परावर्त्तन का सारा-
काम हुआ जब शेष।
स्वयं इन्द्र से बोला-पूरा-
हुआ सभी आदेश।।

सुनकर इन्द्र बहुत हर्षाए-
बोले-तुम हो धन्य।
तुम्हीं देखना इससे जग में-
होंगे कार्य अनन्य॥

आज धरा पर जो संकट है-
होंगे निश्चय नष्ट।
अपनी ज्ञान विभा से भू का-
दूर करेगा कष्ट॥

तुमने पूरा किया आज है-
देवों का ही काम।
निश्चय ही धरती पर होगा-
इसका शुभ परिणाम॥

देवपूज्य यह मनुज धरा को-
देगा शुभ वरदान।
इसके वचनामृत से होगा-
कष्टों का अवसान॥

धन्य कुक्षि त्रिशाल की पावन-
निर्मल परम पवित्र।
तेज-पुन्य अवधारित जिसमें-
जग का शाश्वत मित्र।

आज विश्वमाता है त्रिशला-
जननी परम पुनीत।
गूँजेंगे इस जग में उसके-
भाग्य विभव के गीत।।

धन्य स्वयं सिद्धार्थ कि जिन को-
प्राप्त हुआ यह इष्ट।
पायेंगे जो जग में ऐसा-
उत्तम पुत्र अभीष्ट।।

तृतीय सर्ग

महाराज सिद्धार्थ भवन में-
भजते थे नित प्रभु को मन में।
उनका पुण्य भरा था जीवन-
सुख-सौभाग्य भरे थे पुरजन ॥

कहीं न कोई कष्ट हृदय में-
रहते थे वे सुख अक्षय में।
भाग्यवती वह त्रिशला रानी-
सभी तरह से थी कल्याणी ।।

नृप के ही संग वह भी रहती-
प्रभु की परम भक्ति में बहती ।।
जग में रहकर जग से बाहर-
कमल-पत्र-सी निर्मल सुन्दर ।।

उसके जीवन की थी रेखा-
प्रभु को प्रतिक्षण उसने देखा ।।
था ऐश्वर्य वहाँ पर सारा-
उन्नत था सौभाग्य सितारा ।।

किसी वस्तु की कमी नहीं थी-
दुख की बातें नहीं कहीं थीं।
सुख से सब का मन चंचल था-
भरापुरा वह राज महल था।

सुख के बाजे नित बजते थे-
मन से सुन्दर सब सजते थे।
कोट-कँगूरे सब थे सुन्दर-
सुन्दरता थी भीतर बाहर ।।

जहाँ जरा भी आँखें जातीं-
सुन्दरता से ही टकरातीं।
रेशम जैसा कण-कण कोमल-
नयन-नयन में कज्जल-काजल ।।

कहीं न कोई तनिक मलिन थे-
सबके ही मन भावन दिन थे।
सब थे सुन्दर, हृदय खिला था-
फूलों को मकरन्द मिला था ।।

बागों में कोयल नित गाती-
मधुपावलियाँ थी मँड़रातीं।
तरह-तरह के फूल सलोने
खिले हुए थे कोने-कोने ।।

पुष्पित-सी थी पूरी नगरी-
कमल-नाल-सी ऊपरउभरी।
हर्षित थे सब चहल पहल में-
अपने सुरभित रूप धवल में ।।

नव उमंग-सी लहराई थी-
सुख की विमल घटा आई थी।
त्रिशला अपने राज भवन में-
तंद्रिल सोच रही थी मन में ।।

प्रभु की मनहर-सुखमय गाथा-
साधु-जनों ने जिसे कहा था।
सहसा लगा कि बाहर मन से-
कुछ है निकला उसके तन से ।।

और पुनः वह उर में आया-
मानो उसने सरवस पाया।
गर्भ-परावर्त्तन का क्षण था-
पल-पल सुन्दर मन भावन था ।।

रोम-रोम था उसका पुलकित-
महानन्द की छवि से शोभित।
जागी मन में नयी विभा-सी-
हो ज्यों प्रभु-दर्शन की प्यासी ।।

लगा कि जैसे जाग गयी है-
किरण-किरण तक नयी-नयी है।
सिंह सामने आकर सुन्दर-
देख रहा था उसको जी भर ।।

हाथी भी फिर वहाँ खड़ा था-
ऐरावत-सा बहुत बड़ा था।
वृषभ एक सुन्दर-सा आया-
सुख सौभाग्य धरा पर छाया ।।

फिर तो, खुद ही लक्ष्मी आई-
शेष बचा जो सब कुछ लाई।
युगल, पुष्प माला थी मनहर-
नये-नये-फूलों से गुंथकर ।।

चाँद गगन में मुस्काता था-
मन का मोद बढ़ा जाता था।
सूर्य देव भी नभ में आये-
भू के तम को दूर भगाये।।

ध्वजा गगन में फहराती थी-
कीर्ति भुवन की बढ़ जाती थी।
रौप्य कुम्भ था सुन्दर-मनहर-
चम चम जैसे स्वयं दिवाकर।।

पुनः दृगों में आया सुन्दर-
सुरभित मंगल पद्म सरोवर।
पुनः क्षीर सागर लहराया
क्षण-क्षण का आनन्द बढ़ाया।।

देव विमान दिखा [फिर ऊपर
महामोद में पुलकित सत्वर।
रत्न राशि की ढेर लगी थी-
नयन-नयन में प्रीत जगी थी।।

विमल अग्नि निर्धूम जगाये-
सुख-सौभाग्य भुवन के आये।
ये चौदह अनमोल सुहाने-
सपने देखे थे त्रिशला ने।

देख हुई थी पुलकित मन में
सुख के आँसू गिरे नयन में।
आकर पति के पास हृदय से
प्रीति-संजोये नेह-निलय से।

बोली-महाराज की जय हो-
परम भक्ति की सदा विजय हो।
राजन, मैने खुद ही अपने-
देखे हैं कल चौदह सपने।

इतना कह वह फिर बतलाती-
एक-एक कर नाम बताती।
हँसकर पूछा-अर्थ भला क्या ?
है सपनों की नयी कला क्या ?

मुझे बता दें, मैं क्या जानूं-
कैसे, यह लीला पहचानूं।
ये सपने हैं कितने पावन-
कैसे कह दूं मन-से भावन।

इसी लिए में पूछ रही हूँ-
सुख सरि में कल रात बही हूँ।
राजभवन में नृप ने आ के-
स्वप्न विशारद को बुलवा के।

पूछा-इसका अर्थ बतायें-
कुछ मतलब इसका समझायें।
सब ने शुभ मुहूर्त फिर देखा-
लिया ग्रहों का भी सब लेखा।

सब नक्षत्रों की शुभ गति को-
देखा आदि और फिर इति को।
पोथी-पत्र लिया, विचारा-
था मुहूर्त वह अनुपम न्यारा।

मन से क्षण में हुए अचम्भित-
रोम-रोम तक हो आनंदित।
बोले राजन शुभ्र प्रहर है-
बड़ा दयामय परमेश्वर है।

क्या बतलाऊँ यह सब क्या है-
मिला तुम्हें धन त्रिभुवन का है।
जो कहता हूँ, सच कहता हूँ-
ज्ञान-ज्योति में ही रहता हूँ।

वीणापाणी जो कहलाती-
ज्ञानमयी जो कुछ बतलाती।
वही तुम्हें कहता हूँ सुन लो-
बात हमारी मन से गुन लो।

पुत्र रत्न जो होगा तुम को-
नष्ट करेगा भव के तम को।
सर्व श्रेष्ठ वह ज्ञानी होगा-
आत्मिक बल का मानी होगा।

तपोनिष्ठ सौन्दर्य विभव का-
मंगल करने वाला भव का।
पुत्र रत्न वह होगा ऐसा-
हुआ न भू पर अब तक जैसा।

सब गुण भूषित सबसे सुन्दर-
चकित रहेंगे खुद विश्वम्भर।
सुनकर नृपति मोद में भर कर-
आये राजमहल में सत्वर।

बोले-रानी से मुस्का के-
उनको अपने पास बिठा के।
देखो, सब ने बतलाये हैं-
स्वप्न बड़े सुन्दर आये हैं।

बालक तुम्हें मिलेगा ऐसा-
हुआ नहीं भू-तल पर जैसा।
सुनकर रानी पुलकित तन से-
प्रभु की पूजा की फिर मन से।

विप्र महाजन को बुलवाया-
सबको सादर वहाँ बिठाया।
दान दिया अञ्जुलि में भरकर-
किया सभी कुछ स्वयं निछावर।

रोम-रोम तक उसका जागा-
दु:ख-दैन्य सब भव से भागा।
करना है अब प्रभु का स्वागत-
यह अपूर्व क्षण का है आगत।

मन में निर्मल भाव जगाये-
सब ने मिलकर मोद मनाये।
आनन्द लहर लहराई भू पर-
पुष्प खिले खुशियों के मनहर।

चतुर्थ सर्ग

धरती थी यह सुभग सलोनी-
कण-कण था सरसाया।
तृण-तृण तक में खुशी अपरिमित-
मोद अतुल लहराया॥

पेड़ों की फुनगी पर चिड़िया-
गीत मनोहर गाती।
मलियानिल की पुरवाई-सी-
हवा गंध ले आती ।।

नील गगन में खुशियाँ छाईं-
किरण-किरण थी पुलकित।
पृथ्वी के कण-कण पर मानो-
नयी प्रभा आलोकित।।

सभी तरफ आनन्द-लहर थी-
बड़ी सुखद लहराई।
जाने कैसी घडी सुवासित-
वसुधा पर थी आई ।।

लगा कि सबने मिलकर की है-
स्वागत की तैयारी।
घर-घर में लगता था जैसे-
उत्सव होता भारी ।।

कदलि-खम्भ सब रोप रहे थे-
वन्दनवार सजाते।
मुकुल-बकुल तक पर थे भँवरे-
गुन-गुन कर मँडराते॥

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी थी-
मध्यरात की बेला।
राज महल में लगा हुआ था-
साधु-जनों का मेला॥

ऐसे ही क्षण, प्रभु भी मानव-
तन में स्वयं पधारे।
बने महारानी त्रिशला के-
दृग के नूतन तारे॥

शुभ मुहूर्त वह मंगल क्षण था-
भाव-सुमन मुस्काया।
शकुन सुमंगल आज धरा पर-
स्वयं उतर कर आया॥

राज महल में जय-जय गूंजा-
गूंज उठी शहनाई।
सिह द्वार पर मधुर स्वरों में-
बजने लगी बधाई।।

लोग-बाग सब आ-आ कर थे-
स्वयं बधाई देते।
विप्र-महाजन दान नृपति से-
मुँहमाँगा ही लेते।।

दिव्य प्रकाश धरा पर फैला-
भागा तिमिर भुवन का।
सुरभित पवन प्रवाहित होकर-
आता था नन्दन का।।

देवलोक की स्वय देवियाँ-
दौड़ी भू पर आई।
प्रभु का कर शृंगार उन्हे फिर-
नूतन पट पहराई।।

होकर सब अभिपुष्ट वहाँ से-
देवलोक में आ के।
प्रभु का सब गुण-गान सुनाया-
उनका मंगल गा के।।

आकर किया प्रणाम इन्द्र ने-
मन से पुलकित होकर।
अपनी दिव्य किरण से प्रभु के-
पावन पग को धोकर।।

उनको लेकर तत्क्षण फिर वे-
आये मेरु-शिखर पर।
सजा वहीं पर जन्म-लग्न का-
पहला उत्सव मनहर।।

मेरु-शृंग के ऊपर सुन्दर-
एक शिला पर लेकर।
बैठे इन्द्र स्वयं थे सबको-
शुभ निदेश कुछ देकर।।

सभी देवता और देवियाँ-
आये खुशी मनाने।
प्रभु के पावन जन्मोत्सव में-
मंगल साज सजाने।।

देवलोक में बजी बधाई-
गूँजा साज मनोहर।
कल्प-वृक्ष ने फूल गिराये-
खिलकर उनके ऊपर।।

प्रभु का शुभ अभिषेक हुआ फिर-
स्वर्ण-कलश के जल से।
स्वयं अलंकृत हुए मांगलिक-
अगरु गंध-शतदल से।।

जन्मोत्सव का देव-पुरी में-
हुआ महोत्सव पूरा।
शंकर ने भी वहाँ खुशी में-
छाना भाँग-धतूरा।।

तरह-तरह के मोदक लड्डू-
सबने खूब लुटाये।
सभी मगन थे आज धरा पर-
स्वयं महाप्रभु आये।।
× × ×

इन्द्रराज फिर लेकर उनको-
राजमहल में आये।
त्रिशला के ही स्वर्ण-सदन में-
चुपके उन्हें सुलाये।।

प्रभु की लीला; जैसे ही वे-
धरती पर हैं आते।
जाग उठे सब बड़ी खुशी से-
अपने मोद मनाते।।

होने लगी धरा पर फिर से-
उत्सव की तैयारी।
राज महल फिर गूँज उठा औ'-
जुड़ आये दरबारी।।

बजे नगाड़े-शंख अनेकों-
ढोल-झाँझ औ' तासा।
झर-झर झरे खुशी से लोचन-
रहा न कोई प्यासा।।

जन-परिजन औ' पुरवासी सब-
आकर जय-जय कहते।
महामोद की लोल लहर में-
सब थे निर्भय रहते।।

सब कुटुम्ब के लोग जुटे औ'
गुणी-पुरोहित आये।।
वर्धमान है नाम शुभंकर-
सब ही यह बतलाये।।

कहा कि ये सम्पन्न गुणों से-
परम धीर हैं आये।
चक्रवती-नृप, श्रेष्ठ जनों के-
लक्षण हैं सब पाये।।

कहा कि जब तक चन्द्र-दिवाकर-
इनका नाम रहेगा।
इनके अतुल पराक्रम की नित-
गाथा विश्व कहेगा॥

पंचम सर्ग

गुण ही मानव को मानव से-
उन्नत श्रेष्ठ बनाते हैं।
अपनेपन को विकसित करके-
मनुज देव बन जाते हैं॥

देव-मनुज में इस धरती पर-
थोड़ी-सी ही दूरी है।
पूर्ण विकास हुआ तो उसकी-
यात्रा होती पूरी है॥

सद्गुण के जो बीज हृदय में-
एक बार भर आते हैं।
दिन-दिन वे बढ़ते जाते हैं-
कभी नहीं मिट पाते हैं॥

जग में जो भी आते आ के-
भू का धर्म निभाते हैं।
खेल-खेल में दिव्य - ज्योति का-
दर्शन स्वयं कराते हैं॥

वर्धमान के गुण की चर्चा-
देवपुरी में होती है।
स्वयं इन्द्र ने कहा कि वीरों-
में यह अद्भुत मोती है॥

बालक पन से ही है इसमें-
लक्षण सब पुरुषोत्तम के।
कूट-कूट कर भरे हुए हैं-
निर्भय-गुण नर-उत्तम के।।

यह है, जिसको इस धरती पर-
कोई डरा नहीं सकता।
इनके मन को मलिन जरा भी-
कोई बना नहीं सकता ।।

महज आठ ही वर्ष अभी तो-
इनके होने को आये।
लेकिन खेल विकट पौरुष के-
कितने ही हैं दिखलाये ।।

देवों में ही कितने आ के-
कठिन परीक्षा लेते हैं।
कितने आकर परम तत्व की
इनसे दीक्षा लेते हैं।।

खेल रहे थे 'आमल की' का-
खेल एक दिन उपवन में।
एक देव बन सर्प भयंकर-
आया तत्क्षण उस वन में।।

विषधर अपने फन को ताने-
शीश उठा फुंकार उठा।
स्वयं पवन भी क्षुभित गरल से-
होकर अपरम्पार उठा।।

साथी-संगी जो भी थे सब-
देख उसे घबड़ाते हैं।
खेल छोड़कर डर के मारे-
वे सब भागे जाते हैं।।

कोई कहता भागो जल्दी-
विषधर बड़ा भयंकर है।
वर्धमान ने कहा, रोक कर-
मुझे नहीं इसका डर है।।

उनका मुखड़ा सदा प्रफुल्लित-
भय का था लव-लेश नहीं।
चिह्न तनिक उद्विग्न हृदय का-
आनन पर था शेष नहीं॥

तुरत पकड़ कर उस विषधर को-
दूर कहीं धर देते हैं।
अपनी पूरी मित्र मण्डली-
को निर्भय कर देते है॥

× × ×

हुए सफल जब वर्धमान तब-
देव पुनः अकुलाते हैं।
नयी परीक्षा लेने के हित
दौड़ धरा पर आते हैं॥

एक दिवस सब बालक मिलकर-
खेल रहे थे उपवन में।
छद्म वेश में देव पधारे-
द्वेष भरा था कुछ मन में॥

खेल-खेल में वर्धमान को-
कंधे पर ले भाग चला।
अनायास उस बाल-मंडली
को वह सहसा त्याग चला॥

जैसे ही वह भागा बालक-
अन्य सभी घबड़ाते हैं।
लेकिन कोई वर्धमान को-
बचा नहीं वे पाते हैं॥

जैसे ही वह भागा क्षण में-
विकट-वेश धर लेता है।
अपना बदन बढ़ाकर भीषण-
दानव का कर लेता है॥

कंधे पर थे वर्धमान वे-
तनिक नहीं घबड़ाते हैं।
वज्र मुष्टि से उसके सिर पर-
घूसा एक लगाते हैं॥

उस प्रहार से व्यथित देव ने-
सद्विवेक सब खो डाला।
आज पड़ा था उसे भयंकर-
पुरुष-सिंह से ही पाला।।

होकर प्रकट तुरत निज तन में-
क्षमा माँगता है सत्वर।
शान्त हुए फिर वर्धमान भी-
अभय दान उसको देकर।।

बाल-मंडली हर्षित होकर-
मन से खुशी मनाती है।
दूर-दूर तक इनकी गाथा-
सदा फैलती जाती है।।

देव-लोक में गुंजित थे स्वर-
देव सभी हर्षाए थे।
वर्धमान के जय की गाथा-
सुनकर दौड़े आए थे।।

गूँज रहा था जय-जय का स्वर-
देव-गणों के कानों में।
वर्धमान की जय के स्वर थे-
गुंजित पवन तरानों में।।

कल्पवृक्ष की डाली-डाली-
इस स्वर को दुहराती थी।
स्वर्ग-लोक की माल्यवती से-
इसकी ही ध्वनि आती थी।।

मलय पवन चलता था, वह भी-
जय का ही स्वर लाता था।
वर्धमान की जय का स्वर ही-
सभी तरफ से आता था।।

नन्दन वन के फूल सुकोमल-
बिहँस-बिहँस खिल जाते हैं।
उनके सौरभ में भी जय के-
स्वर ही भर कर आते हैं।।

नन्दन वन में देव - गणों की-
सभा तुरत लग जाती है ।।
वर्धमान की 'जय' तत्क्षण ही-
वहाँ पहुँच जग जाती है ।।

दिशा-दिशा में गूँज रहा था-
वर्धमान की जय का स्वर ।
शिखर-शिखर तक गूँज रही थी-
प्रतिध्वनि उसकी ही सुन्दर ।।

स्वयं इन्द्र ने भरी सभा में-
उनको समुचित मान दिया ।
"महावीर" उद्घोषित कर के-
उनको नव सम्मान दिया ।।

वर्धमान को 'महावीर' यह-
पावन नाम प्रदत्त हुआ ।
उनके गुण-गौरव की महिमा-
सुनकर सब आसक्त हुए ।।

उनके विकट पराक्रम के सब-
गाथा जग में ख्यात हुए।
महावीर के शुभ्र नाम से-
जग में वे प्रख्यात हुए।

बालक-पन से ही सब उनके-
यश की गाथा गाते हैं।
उनके पावन चरित धरा पर-
सुनते और सुनाते हैं।।

बल-विक्रम की अनुपम गाथा-
घर-घर में सब गाते हैं।
महावीर के पावन पग पर-
श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं।।

इनके चरित-सिन्धु का जो भी-
अवगाहन कर पाता है।
भव में वह भी होकर निर्मल-
खुद पवित्र बन जाता है।।

षष्ठम सर्ग

सभी गुणों के जो हैं धारक
होते वे ही जग-उद्धारक।
मति-श्रुति निर्मल अवधि-ज्ञान से-
सदा समन्वित गुण महान् से।

उनका सत्य स्वरूप निरन्तर-
सदा प्रकाशित निखर-निखर कर।
उनको कुछ भी दोष न रहता-
मन में दुख अवशेष न रहता।

बुद्धि विमल खुद सब कहती है-
पास शारदा नित रहती है।
लेकिन जग के प्राणी कैसे-
समझें को हैं निर्मल ऐसे।

जग की लीक निराली होती-
दृग भरमाने वाली होती।
उसको शाश्वत ज्ञान न होता-
पत्थर को आँसू से धोता।

आँख हृदय की जब खुलती है-
कालिख मन की जब धुलती है।
तभी समझ वह कुछ पाता है-
'विश्व निराला'-कह जाता है।

स्वयं नृपति सिद्धार्थ विकल थे-
पुत्र मोह से खुद चंचल थे।
विमल 'ज्ञान शाला' में जा के-
वर्द्धमान को खुद बैठा के।

सोचा, निर्मल ज्ञान मिलेगा-
भूतल पर सम्मान मिलेगा।
पता नहीं था, जो है कर्त्ता-
आखिर भुवन का पोषक भर्त्ता।

वही देह धर मूर्त्त खड़ा है-
जग का फिर क्या तत्व बड़ा है।
हस्तामलक उसे सब रहता-
उसकी वाणी से सब कहता।

भू पर इन्द्र उतर आते हैं-
स्वयं 'ज्ञान शाला' जाते हैं।
महावीर को खुद ही लेकर-
बैठते गुरु के आसन पर।

चकित सभी होकर के क्षण में-
लगे सोचने अपने मन में।
यह क्या रीति जगत की भाई-
इसने कैसी बुद्धि दिखाई।

स्वयं इन्द्र ने प्रश्न अनेकों-
किये और फिर कहा कि देखो।
इनका गुम्फित तत्व समझ कर
कौन भला दे सकता उत्तर।

महावीर ने सब उद्घाटन-
किया बताकर सब विश्लेषण।
सुनकर जन-जन हुए अचम्भित-
दिव्य ज्ञान से भाव-समन्वित।

फिर तो ज्ञान प्रभा लहराई-
दिव्य छटा धरती ने पाई।
लोग हुए पुलकित आनंदित-
प्रभा समुज्ज्वल से संदीपित।

उनको राज महल में लाकर-
किया प्रतिष्ठित उच्चासन पर।
बढ़कर उनसे धीर कहाँ है-
ज्ञान मूर्ति गम्भीर कहाँ है।
× × ×

इसी तरह क्षण लगे बीतने-
समय सुहावन लगे रीतने।
युवा अवस्था प्राप्त हुए जब-
महावीर भव-आप्त हुए जब।

सोचा नृप ने, चाह करें अब-
इनका शुभ्र विवाह करें अब।
समरवीर सामन्त वहीं थे-
शुद्ध तत्त्व-विद्वान कहीं थे।

पुत्री उनकी पावन शुभदा-
पुण्यवती थी नाम यशोदा।
× × ×
नगर-डगर सब सजा सुहाना-
गीतों का फिर जगा तराना।

शोभा पूरे राज नगर की-
गली-गली की डगर-डगर की।
ऐसी थी मन मोहक, जिसकी-
उपमा देना किसके बस की।

लोग-बाग सब सजे-धजे थे।
घर-घर बाजे खूब बजे थे।।
सभी तरफ बस सुख लुटता था-
मानो दुख का दम घुटता था।

धूम धाम से ब्याह रचाया-
जिसने माँगा जो भी, पाया।
मिली यशोदा महावीर से-
ज्ञान-दीप, दृढ़, परम धीर से।

× × ×

राग रंग सब होते घर-घर-
झर-झर झरते सुख के निर्झर।
पुत्री एक हुई फिर चंचल-
दूध-धुला तन कोमल-कोमल।

भोली-भाली बड़ी सुहसना-
नाम पड़ा था—पुण्य-दर्शना।
उसे देख सब खुश होते थे-
पुण्य सलिल से दृग धोते थे।

× × ×

सुख-वैभव सब भरा-पुरा था-
सभी भले कोई न बुरा था।
एक कामना सबके मन में-
वसी हुई थी राज सदन में।

वने नही वे परम विरागी-
वने मधुर जीवन-अनुरागी।
यहीं रहें, यह धरा न त्यागें-
हमें छोड़कर कभी न भागें।

× × ×

किन्तु, तपस्वी महावीर ने-
कब सोचा यह परम धीर ने
उनके मन में लगन लगी थी-
भव के हित की जोत जगी थी।

राग-रंग तो सब होते थे-
इनमें पर वे कब खोते थे।
इनमें इन से ऊपर रह कर।
रत थे साधन में सब सह कर।

कोई इनको बाँध न पाया-
किसी लोभ ने नहीं सताया।
पत्नी आई, रहे अकम्पित-
पुत्री भी आती थी पुलकित।

किन्तु ग्रहण का भाव नहीं था-
बन्धन-स्नेह-प्रभाव नही था।
जल में रह कर जल से ऊपर-
सरसिजवत् ही थे जीवन भर।

कठिन साधना का तप सहते-
भव में भव से ऊपर रहते।
× × ×
बढ़ता आया समय निरन्तर-
महाराज थे चिन्तित भू पर।

त्रिशला भी थी ध्यान लगाये-
मन में प्रभु को सदा बसाये।
दोनों ने ही यहाँ धरा पर-
किये पुण्य ही थे जीवन-भर।

तन पवित्र औं शुद्ध हृदय था-
जीवन साधनमय निश्चय था।
देकर श्री, नन्दी वर्धन को-
राजपाट औ सारे धन को।

कर संथारा स्वर्ग सिधारे-
चमके नभ में दिव्य सितारे।
× × ×
महावीर ने सोचा मन में-
सब का हो कल्याण भुवन में।

महज अठाइस वर्ष हुए थे-
यौवन के उत्कर्ष हुए थे।
सोचा, इस गृहस्थ आश्रम को-
स्वयं तिलाञ्जलि देंगे तम को।

महाप्रस्थान करेंगे सत्वर-
होगा जिससे भूतल सुन्दर।
ज्येष्ठ-बन्धु नन्दीवर्धन से-
बोले, श्रद्धा पूर्वक मन से।

नत मस्तक हो किया निवेदन-
भइया तुमको मेरा वन्दन।
हाथ जोड़कर कहता हूँ मैं-
भव की पीड़ा सहता हूँ मैं।

दुनिया के दुख कैसे-कैसे
रहूँ देखता कैसे, ऐसे।
जाने दें, मैं सच कहता हूँ-
रह कर घर में कब रहता हूँ।

सुनकर बोले— नन्दीवर्धन-
रोकेगा क्या तुमको बन्धन।
जान रहा हूँ तेरी लीला-
देखा रूप अतुल चमकीला।

तुम इस जग के नहीं जीव हो-
महाज्योति की प्रबल नींव हो।
वही करोगे, जिसमें निश्चय-
होगी धरती दुख से निर्भय।

किन्तु कहो क्या, बोलूं मुख से
माता और पिता के दुख से।
अभी कहाँ कुछ त्राण मिला है-
लगता मन पर धरी शिला है।

ऐसे में जब तुम भी मेरे-
पास न होगे साँझ-सबेरे।
तब मै कैसे जी पाऊँगा-
कैसे साँस चैन की लूँगा।

फिर भी मैं कुछ रोक न सकता-
पथ से तुमको रोक न सकता।
जिसमें जग का पुण्य समाहित-
उसको बाँधू अपने ही हित।

ऐसा कभी नहीं कर सकता-
सिर पर पाप नहीं धर सकता।
अभी मात्र दो वर्ष यहाँ पर-
रहो हमारे साथ बन्धु वर।

फिर जो चाहोगे, कर लेना-
पुण्य जगत का सिर धर लेना।
कभी नहीं मैं रोकूँगा फिर-
जगत तेरी ही है आखिर।

इतना कह कर शान्त हुए जब-
महावीर ने चरण छुए तब।
फिर वे बोले—जो कहते हैं-
खूब समझता; जो सहते हैं।

बात आपकी मान रहा हूँ-
अलग आपसे भला कहाँ हूँ।
दो वर्षों तक अभी रहूँगा-
यहीं तपस्या-ताप करूँगा।

सुनकर नन्दीवर्धन अविकल-
खिले कि जैसे खिलता शतदल।

सुख से वे क्षण भर हर्षाए-
दृग में अश्रु खुशी के छाए।

सप्तम सर्ग

महावीर थे पुण्य धरा पर
मन से परम तपस्वी।
मनः विजेता दिव्य ज्ञान के-
ज्ञानी श्रेष्ठ मनस्वी॥

राज महल में साधु-सरीखे-
सौम्य सरल थे रहते।
संयममय जीवन था उनका-
बात विनय से कहते।।

उनतीस वर्षों में ही वे जब-
और प्रौढ़ बन आए।
नौ लोकान्तिक देव वहाँ पर-
आकर कुछ समझाए।।

कहा कि—"जय हो! महावीर ही-
अब कल्याण करेंगे।
भव में दुख का जो प्रदाह है-
निश्चय वही हरेंगे।।

धर्म तीर्थ की शीघ्र स्थापना-
अब तो शीघ्र करायें।
जग का हो कल्याण, यहाँ सुख-
शान्ति विमल फैलायें।।

विनय सुनाकर देव वहाँ से-
आये नील निलय में।
लगे सोचने महावीर भी-
अपने शुद्ध हृदय में।।

एक वर्ष ही शेष बचा है-
प्रव्रज्या लेने में।
चलो लगूं मैं अभी यहीं से-
अपना सब देने में।।

मुक्त हस्त से दान सभी को-
देते हैं नित उठकर।
मणि-धन-वस्त्राभूषण कितने
नव-नव किए निछावर।।

गेह-त्याग के पूर्व यही तो-
सबसे उत्तम साधन।
महावीर ने लिया खुशी से-
उसका ही आलम्बन।।

एक वर्ष तक हँसते-हँसते-
सब कुछ वहाँ लुटाये।
खुद को अपने आप तपाकर-
और सुदृढ़ बन आये॥

रहा न कोई दृग के आगे-
रीता वहाँ अकिंचन।
मुक्त हस्त से महावीर ने
जहाँ लुटाया कंचन॥

× × ×

वर्षीदान हुआ जब पूरा-
कर ली नव तैयारी।
आत्मा के नव शुद्ध वरण में-
चलने की थी बारी॥

सुरसरि की धारा हो जैसे-
शुद्ध भाव थे जगते।
हस्तामलक सिद्धि थी सारी-
दूर नहीं कुछ लगते॥

जग का हो कल्याण इसी में-
सदा निरत रहते थे।
परम शान्ति की बात हृदय से-
सब को ही कहते थे ।।

मन में कल्मष नहीं शेष था-
दृढ़ थे अपने व्रत पर।
मनः साधना के तप से ही-
बढ़ते रहे निरन्तर ।।

वर्षीतप की लीला सब ने-
अद्‌भुत देखी भू पर।
पाते थे सन्तोष अखण्डित
अपना सब कुछ देकर ।।

जो भी लेता महा प्रसादी-
समझ सुखी हो जाता।
वह भी प्रभु के विमल भाव में-
सहज वहीं खो जाता ।।

महावीर की महा प्रसादी-
कह-कह कर सब लेते।
सबकी इच्छा सरल भाव से-
पूर्ण तुरत कर देते।।

विनय-सहित सब ले लेते थे-
महावीर जो देते।
कोई प्रश्न न उठता मन में-
जब प्रसाद वे लेते।।

महावीर की महाप्रसादी-
सबके सुख की दाता।
पाकर निर्धन भी धनवाला-
क्षण में ही बन जाता।।

एक वर्ष की कठिन साधना-
पूरी जब हो आई।
किरण विमल फूटी अम्बर में-
जन-जन की सुखदाई।।

अष्टम सर्ग

महावीर अनगार धर्म के-
लिए स्वतः उद्यत हैं।
त्याग मोह सम्पूर्ण परिग्रह-
जीवन में ही रत हैं॥

स्थावर-जंगम जो भी दिखते-
सृष्टि लुभाने वाली।
कुञ्ज-लता सुषमित छवि जग की
मन बहलाने वाली॥

सबमें है आसक्ति भरी सब-
पथ के रोड़े होते।
ये आकर्षण पुण्य नहीं, बस-
बीज जहर के बोते॥

सबसे बडा मोह का बन्धन-
चाहे वह हो जैसा।
रह सकता है मुक्त मनुज ही-
शुद्ध रूप में वैसा॥

निखिल सृष्टि के हित में जो है-
परम भाव वैरागी।
पूर्ण ज्ञान परिपुष्ट समाहृत-
सकल वासना त्यागी॥

महावीर के तेजोमय तप-
पावन गंगा जल-से।
धुल कर दीप्त-पवित्र बने थे-
अपने सात्विक बल से।।

शुभ परिणाम पुण्य है उसका-
अशुभ पाप का कारण।
देख लिया था इस धरती पर-
इसका कठिन निवारण।।

अपना हित जो चाहे उसको-
सबका हित है करना।
और नहीं तो पड़ता जग में-
उसको सदा विचरना।।

आत्मा का सब दुःख स्वयं का-
निर्मित पुञ्ज गहन है।
आत्मलीन होने पर ही तो-
निर्मल होता मन है।।

ऐसा होकर आत्मा खुद-
परमात्मा ही बन जाती।
फिर वह सारे कर्मों से खुद-
छुटकारा है पाती।।

खुद गवेषणा करनी होगी-
आत्मा ही के द्वारा।
नष्ट न होता आत्मा का यह-
सात्विक दृढ़ ध्रुव तारा।।

महावीर ने जान लिया जो-
भाव हृदय में जगता।
वही मूल बन्धन का कारण
जीवों में है लगता।।

इससे मुक्ति प्राप्त करना ही-
केवल ध्येय मनुज का।
कभी नहीं बन्धन में रहना-
कोई श्रेय मनुज का।।

महावीर तैयार खड़े थे-
मन को सबल बना के।
मन में पावन प्रभा समुज्ज्वल-
की नव-ज्योति जगा के।।

इधर ज्येष्ठ भ्राता ने नूतन-
उत्सव एक रचाया।
दीक्षा के मंगल क्षण के हित-
पूरा नगर सजाया।।

नये महोत्सव की खुशियाँ थीं-
व्यक्ति-व्यक्ति पर छाई।
घर-घर में आनन्द, लहर की
धारा उमड़ी आई।।

सोने चाँदी के कलशों में-
पावन जल भरवाया।
इन्द्र आदि देवों ने प्रभु का-
सब अभिषेक कराया।।

अगरु-धूप चन्दन से वासित-
तन पर लेप लगाया।
तन पर रेशम वस्त्राभूषण-
प्रभु को वहाँ पिन्हाया॥

पुष्प सदा अम्लान रहे जो-
उसकी माला लेकर।
खुशी मनायी नर-नारी-ने-
भेंट हृदय से देकर॥

दीक्षा की वह शोभा यात्रा-
उमड़ी राज नगर से।
बाल-वृद्ध औ युवक-युवतियाँ-
निकल पड़ी घर-घर से॥

परम सिद्धि की प्राप्ति हेतु प्रभु-
निकले राजमहल से।
आत्मा को परिलक्ष्य बनाये-
भव के कोलाहल से॥

शिविका एक शुभग थी जिसमें-
बैठे प्रभु मन भावन।
परिजन औ पुरवासी बैठे-
उनके पग में पावन ।।

देवों औ इन्द्रों ने मिलकर-
दिव्य पालकी लाई।
करते जय का नाद स्वयं ही-
पहले उसे उठाई ।।

प्रभु के महात्याग का आशिष-
महिमा सिर पर लेते।
जुटे हजारों भाव-भरे सब-
उन्हें बिदाई देते ।।

शुभ्र विजय मुहूर्त से बढ़कर-
ज्ञात-खण्ड सब आये।
'जय-जय' का स्वर गूंजा, सबने
प्रभु के दर्शन पाये ।।

प्रभु ने अपना वस्त्राभूषण-
आकर यहीं उतारा।
कुल-वृद्धा को सौंप; कहा-यह-
माता; सभी तुम्हारा॥

दो दिन का उपवास किया फिर-
ज्ञान-विमल बिखराया।
दीक्षा का संकल्प सुनाकर-
परम लाभ को पाया॥

कुल-वृद्धा ने प्रभु के सम्मुख-
आशीर्वचन सुनाये।
'प्रभु के पथ पर विघ्न न होंगे'-
दृढ़ विश्वास दिलाये॥

पञ्चमुष्टि-से लोच किया फिर-
प्रभु ने सबके सम्मुख।
'जय हे, जय हे'-बोले जन-जन-
होकर उनके अभिमुख॥

चार मुष्टि से मस्तक के सब-
केशों को था त्यागा।
एक मुष्टि से दाढ़ी-मूँछों-
का जीवन भी भागा॥

स्वयं इन्द्र ने ग्रहण किया था-
उन केशों को अपने।
उन केशों में गुंथे हुए थे-
दिव्य अपरिमित सपने॥

सिद्धों को फिर नमस्कार कर-
जन-जन-को बतलाया।
सिद्ध वही है जिसने अपनी-
आत्मा को है पाया॥

आत्म-ज्ञान से बढ़कर कोई-
ज्ञान नहीं है जग में।
विघ्न अनेकों आते लेकिन-
आत्मोन्नति के मग में॥

सिद्ध जगत में सागर जैसे-
है गम्भीर निरंतर।
कल्पवृक्ष-सा जग को देते-
ज्ञान-लब्धि का अवसर॥

जहाँ न सुख-दुख, पीड़ा कोई-
अनुभव जन्म-मरण का।
सिद्ध बताते वही मोक्ष है-
कारण और करण का॥

जहाँ न तृष्णा, भूख-प्यास है-
जहाँ न निद्रा विस्मय।
मोह नहीं; उपसर्ग नही है-
मोक्ष वही है निश्चय॥

सिद्ध 'अजीव' वही है, जिसको-
सुख-दुख नहीं सताता।
कभी अहित की आशंका से
भीत नहीं हो पाता॥

इतना कह कर प्रभु ने तत्क्षण-
साधु-धर्म स्वीकारा।
पाँच महाव्रत के साधन को-
मन में तुरत उतारा॥

पहला व्रत है परम अहिंसा-
दुःख न जो उपजाता।
पर पीड़ा में जो लगता है-
तम से तम में जाता॥

सत्य-दूसरा जिसे जगत का-
सारभूत ही मानो।
सत्य अनन्त कि इसको अपना-
परमेश्वर ही जानो॥

और अचौर्य तीसरा व्रत है-
साधन का प्रिय सम्बल।
लोभ-ग्रसित मन सिद्ध न होता-
रहता प्रतिक्षण चंचल॥

ब्रह्मचर्य है चौथा जिसका-
पालन बड़ा उचित है।
ब्रह्मलीन इसके पालने से-
रहता प्रतिपल चित है॥

और पाँचवा अपरिग्रह है-
इच्छाओं का धारक।
आवश्यक जो, ग्राह्य वही है-
अन्य मोह उद्धारक॥

'जय-जय' के स्वर गूँजे नभ में-
गूँजा सब दिग्मण्डल।
देव-लोक से प्रभु पर बरसे-
अनाघ्रत नव शतदल॥

स्वयं इन्द्र ने बाम कंध पर-
देव-दूष्य पट डाला।
बड़ा अलौकिक मूल्यवान-सा
निर्मल बड़ा निराला॥

× × ×

महा साधना के क्रम में प्रभु-
जहाँ-जहाँ भी जाते।
युवक-युवतियाँ, बाल-वृद्ध सब-
सुनकर दौड़े आते॥

वस्त्र हीन निज दिव्य रूप में-
महा साधना तत्पर-
आते देख स्वयं सब करते-
तन-मन सकल निछावर॥

प्रभु की पावन चरण-धूलि पर
राज-मुकुट लुंठित थे।
जीवन-जीव-जगत के कोई-
तत्त्व नहीं कुंठित थे॥

हस्तामलक सृष्टि थी सारी-
दृग में ब्रह्म समाया।
जो भी जो सपना ले आया-
अपना सर्वस पाया॥

नवम सर्ग

वैशाली में सोम नाम का-
एक विप्र था रहता।
निर्धन था वह तरह-तरह का-
दु:ख अहर्निश सहता॥

एक बार वह बड़ी विपद में-
पड़कर था अकुलाया।
धन की खातिर देश छोड़ कर
वह विदेश था आया॥

सोचा,अर्जन कर के धन जब-
जायेगा वह घर में।
उसकी पत्नी स्वयं करेगी-
स्वागत मीठे स्वर में॥

किन्तु भाग्य का खेल, वहाँ वह-
कमा नहीं कुछ पाया।
द्रव्य गाँठ में जो भी था वह-
उसने वहाँ गँवाया॥

अपने घर जब वापस आया-
खाली हाथों छूछा।
तुरत डपट कर उससे उसकी-
पत्नी ने ही पूछा॥

कहाँ गये थे मुद्रा लाने-
कौड़ी एक न लाई।
घर का भी सब द्रव्य गँवाया-
अच्छी रही कमाई॥

तुम से अच्छे अन्य सभी हैं-
घर बैठे सब पाये।
प्रभु ने वर्षीदान समय तो-
सब को सुखी बनाये।

उस अवसर पर वर्धमान ने-
मुद्रा दान किया था।
रोज हजारों मुद्राओं का-
दान महान दिया था॥

तुम रहते तो यह दिन मुझको-
नहीं देखना पड़ता।
निर्धनता के दुख का काँटा-
नहीं हृदय में गड़ता॥

किन्तु अभागे, चूक तुम-
अब मैं कैसे बोलूं।
इस पीड़ा को, कहो, आज मैं-
किसके सम्मुख खोलूं॥

मैं तो फिर भी, यह कहती हूँ-
वहीं आज तुम जाओ।
महावीर हैं जहाँ, वहीं पर-
जाकर शीश नवाओ॥

दया-मूर्ति हैं; करुणा-सागर-
निश्चय कृपा करेंगे।
पर-उपकार सिद्ध पुरुष हैं-
सब दारिद्रय हरेंगे॥

सोम विप्र को लगा कि जैसे-
राह पड़ी दिखलाई।
वर्धमान के दान-धर्म की-
गाथा पड़ी सुनाई॥

झटपट तीव्र वेग से चलकर-
वह बिहार में आया।
शीश झुकाकर प्रभु के आगे-
अपना कष्ट सुनाया॥

प्रभु के पास शेष था अब तो-
देव दूष्य-पट केवल।
उसको आधा चीर तुरत ही
दिया सोम को सम्बल॥

हर्षित होकर सोम वहाँ से-
घर में अपने आया।
वस्त्र दिखाकर, पत्नी से वह
बोला—"देखो, लाया॥

मैं क्या जानूं कैसा है यह-
कैसी इसकी लीला।
प्रभु ने खुद ही मुझे दिया है-
अपना पर चमकीला॥"

पत्नी बोली—"प्रभु ने तुमको
महा प्रसाद दिया है।
निश्चय मंगल होगा, प्रभु ने-
आशीर्वाद दिया है।।"

पुलकित तन वह चली वहाँ से-
बुनकर के घर आई।
बोली यह परिधान सलोना-
लाई हूँ मैं भाई।।

मुझे चाहिए इसकी कीमत-
जो भी मोल लगाओ।
मूल्य भला क्या दोगे, कुछ तो-
मुझको जरा बताओ।।

बुनकर बोला-"कहाँ मिला है-
यह अनमोल बड़ा है।
इसके रेशे-रेशे में तो-
अद्‌भुत रत्न जड़ा है।।

इसका आधा जहाँ पड़ा है-
दे दो यदि तुम लाकर।
सच कहता, सब कष्ट मिटेगा-
उसको ही बस पाकर॥

लाखों मुद्रा तुम्हें मिलेगी-
जीवन सुखद बनेगा।
ऐसे तो यह आधा ही है-
कैसे कोई लेगा॥"

तुरत सोम से सब कुछ कह कर-
बोली—अब तुम जाओ।
प्रभु को अपनी विनय सुनाकर
आधा पट ले आओ॥

सोम गए, फिर झट से प्रभु के-
आगे शीश नवाया।
लेकिन कोई शब्द न फूटा-
बात न कुछ कह पाया॥

उल्टे पाँव वहाँ से लौटे-
मन ही मन सकुचाते।
यही सोचते, कैसे प्रभु को-
मन की बात बताते॥

लेकिन प्रभु सर्वज्ञ, सभी का-
सब कुछ देख रहे हैं।
बिना कहे, गति सब के मन की-
क्षण-क्षण लेख रहे हैं॥

सोम बढ़े; तो देखा आगे-
उड़ता वह पट आया।
यह आश्चर्य, वहीं झाड़ी में-
दिखा पड़ा उलझाया॥

प्रभु की दया अपार हुई थी-
हँसते ही घर आये।
आकर अपनी पत्नी को फिर-
सुन्दर पट दिखलाये॥

पत्नी ने बुनकर को देकर-
दुख-दारिद्रय भगाया।
करुणा-सागर की करुणा पा-
सुख सौभाग्य जगाया ॥

तब से ही प्रभु पूर्ण दिगम्बर-
रहने लगे धरा पर।
शान्त-विशुद्ध -अनन्त- अनावृत-
जैसे निर्मल अम्बर ॥

दशम सर्ग

त्याग-मूर्त्ति नव ज्योति अकम्पित-
वीत राग सब ज्ञान-समन्वित।
प्रभु थे कठिन साधना में रत-
ध्यानावस्थित खड़े विटप-वत्।

क्षय करना था कर्म पुरातन-
अवरोधक मन का अवगुंठन।
उसी कुमार ग्राम का भोला-
गो-पालक आकर था बोला।

"मेरे यहीं पड़े हैं गोचर-
जरा ध्यान तुम रखना इन पर।
जरा देखना भाग न जाये-
इनको कोई चुरा न पाये।"

बोला और गया फिर घर में-
लौटा वापस साँझ प्रहर में।
बोला—"दिखने नहीं यहाँ पर-
कहाँ गये सब मेरे गो-चर?"

प्रभु थे ध्यान-मगन क्या बोलें-
कैसे उसकी गाँठें खोलें।
बिना सुने कुछ; गोपालक फिर-
चला ढूँढने गोधन आखिर।

गाँव-गाँव में घर-घर ढूँढ़ा-
वन, पर्वत पर जा कर ढूँढ़ा।
यहाँ वहाँ सब जगह अटकता-
रात-रात भर रहा भटकता।

पता न लेकिन कुछ भी पाया-
सारी रात रहा भरमाया।
खूब सवेरे जब आता है-
पास वहीं गो-धन पाता है।

प्रभु हैं अविकल ध्यान लगाये-
गो-धन पास उन्हीं के आये।
गो-पालक को लगा कि जैसे-
इसने ही भटकाया ऐसे।

मूढ़ हृदय में क्रोध जगा के-
रस्सा बैलों का ही ला के।
प्रभु पर खींच चलाया तत्क्षण-
अपने-पन से होकर उन्मत।

इन्द्र स्वयं फिर दौड़े आये-
हाथ पकड़ कर सब समझाये।
कहा कि देखो परम तत्व है-
जग में इसका नव महत्व है।

मत समझो, कोई साधारण-
जन है, यह तत्वों का कारण।
वर्धमान है महावीर ये-
तपः पूत भव-इष्ट धीर थे।

सुन कर, गोपालक के मन में-
भाव जगा, कुछ नूतन क्षण में।
गिरा चरण पर अश्रु बहाया-
अपना सारा पाप मिटाया।

प्रभु का फिर गुण-गान सुना के-
चला हृदय से वह हर्षा के।

एकादश सर्ग

प्रभु थे ज्ञान-तत्व वैरागी
भव में, भव से दृढ़ वैरागी।
ज्योति-ज्ञानमय-विभा निरंतर-
फैल रही थी भूपर घर-घर।

परम पूज्य इस वसुन्धरा का-
करने को कल्याण धरा का।
कठिन साधना में रत रहते-
स्वयं अजाने सब कुछ सहते।

अस्थिक गाँव पधारे चल कर-
सोने-से निष्कलुष पिघल कर।
यहाँ एक मंदिर का भीषण-
शूलपाणि - यक्षावृत - कर्षण।

यक्ष क्रूर था, सब डरते थे-
उसके भय से सब मरते थे।
वहाँ किसी में शक्ति नहीं थी-
मन में ऐसी भक्ति नहीं थी।

जिससे कोई प्राण बचाये-
क्रूर यक्ष को मार भगाये।
प्रभु थे उस मंदिर में जा के-
बैठे निश्चल ध्यान लगा के।

यक्ष रात में घात लगा के-
टूटा उन पर बज्र गिरा के।
अट्टहास फिर किया जोर से-
अशनि-पात के तुमुल शोर से।

दिग-दिगन्त में शोर हुआ था-
गर्जन चारों ओर हुआ था।
बनकर दानव गज के जैसे,
बड़े-बड़े फिर विषधर जैसे।

रूप विकट वह धर कर भू पर-
करता था आघात भयंकर।
लेकिन निश्चिन्त अचल थे-
क्षण भर को भी नहीं विकल थे।

ध्यान लगाये रहे निरन्तर-
रह कर भू पर; भू से ऊपर।
यक्ष भयंकर हुआ पराजित-
पाकर दारुण शक्ति अपरिमित।

अपना सब अपराध बता कर-
बैठा पग में शीश नवा कर-
प्रभु से भीख क्षमा की माँगी-
विकट क्रूरता पल में त्यागी।

सुखी हुए सब जन-पुरवासी-
होकर प्रभु के दृढ़ विश्वासी।

द्वादश सर्ग

एक साधु था क्रोध-विवश वह-
मर कर चैन न पाया था।
नाम चण्डकौशिक था उसका-
सर्प-योनि में आया था॥

दृष्टिविष वह बड़ा क्रूर था-
सब को काट गिराता था।
वड़ा भयंकर था, वह वन में-
सब उत्पात मचाता था॥

जंगल में उस राह न कोई-
कभी भूल से चलता था।
क्रोध-अंध वह जिसे देखता-
उस पर जहर उगलता था॥

प्रभु ने ज्यों ही देखा जंगल-
दया उमड़ कर आती है।
प्रभु की पावन कृपा दृष्टि
वन प्रान्तर नहलाती है।

उसकी बाँबी के सम्मुख प्रभु-
जाकर ध्यान लगाते हैं।
कण-कण ध्यानावस्थित मन के-
सौरभ खुद भर जाते हैं॥

कुपित सर्प ने सोचा, देखें-
कौन यहाँ पर आया है।
किसे काल ने बरबस ऐसे-
असमय ग्रास बनाया है॥

उठा विकट फुंकार मारता-
तान भयंकर फण काला।
भीषण विष के विषम दाह से-
लगता था वह मतवाला॥

किया प्रहार क्रुद्ध हो प्रभु पर-
कस कर दाँत गड़ाता है।
अंग-अंग में विष से भरकर-
काँटा खूब चुभाता है॥

लेकिन यह क्या, हुआ अचम्भित-
प्रभु को निश्चिल देख वहाँ।
अरे अभागे हुआ कहो क्या ?
जहर भयंकर गया कहाँ।

उठा पुनः वह; जहर अँगूठे-
में प्रभु के फिर दे मारा।
किन्तु चकित था; देख कि उससे-
निकली दुग्ध धवल धारा॥

शीश उठा जो देखा प्रभु को-
शान्ति तनिक मन में आई।
प्रभु के मुख-मण्डल की आभा
धरती तक पर थी छाई॥

समझ गये प्रभु यही समय है-
इसको कर्म छुड़ाना है।
सर्प-योनि से इसे उठा कर-
देव-योनि में लाना है॥

साधु विमल था, किन्तु ग्रहों के-
फेरे में भरमाया है।
पथ से स्वयं भटक कर ऐसा-
आज विषम बन आया है॥

प्रभु ने कहा कि "देखो कौशिक-
क्रोध भयंकर शान्त करो।
मन में प्रभु का प्रेम जगाकर
करुणा का मधु स्रोत भरो॥

क्रोध, शिला की रेखा जैसे—
मन से कब मिट पाता है।
इसके पासों में बँध कर नर-
घोर नरक में जाता है॥

शमन करो यह क्रोध भयंकर-
दया - भाव मन में लाओ॥
आत्मा को विकसित करके तुम-
परम शान्ति अब पा जाओ॥"

प्रभु के इतना कहने से ही-
पूर्व जन्म सब ज्ञात हुआ।
क्रोध मिटा, तम धुला अचानक-
जागा नया प्रभात हुआ!

क्षमा माँग वह प्रभु से निश्चल-
देव योनि को पाता है।
तब से ही वह वन - प्रदेश की-
सुखद-सुभग बन जाता है।

त्रयोदश सर्ग

ज्ञान-रूप थी प्रभु की आभा-
देख सभी हर्षाते।
दूर-दूर से लोग उमड़कर-
उन्हें देखने आते॥

प्रभु भी अपनी चरम शान्ति से-
सबको दर्शन देते।
अहोभाग्य था सभी जनों का-
उनसे आशिष लेते।।

उनकी ज्ञान-विभा का सबको-
नव प्रकाश था मिलता।
परम विरागी का प्रभाव था-
सब जीवों पर पड़ता।।

सुरभी पुर से राजगृह को-
चले विमल मन प्रभुवर।
गंगा पार चले थे करने-
एक नाव में चढ़ कर।।

उसी समय पाताल लोक का-
सुदंष्ट्र देव अकुलाया।
पूर्व जन्म का वैर अचानक-
उसके मन में आया।।

प्रभु से उसको बड़ा द्वेष था-
पहले किसी जनम में।
सोचा, विघ्न डाल दूँ चल कर-
इनके प्रकृति नियम में।

सहसा ज्वार उठा गंगा में-
आँधी भीषण आई।
लगा कि जैसे महाप्रलय की-
धार उमड़ लहराई।।

वहाँ नाव के अन्य सभी जन-
बेहद थे घबड़ाये।
क्रूर देव ने महा उपद्रव-
के थे जाल बिछाये।।

किन्तु अचानक कम्बल-शम्बल-
नाग-देव दो आये।
देखा नैया में बैठे हैं-
प्रभुवर ध्यान लगाये।।

दोनों ने मिल कर उस राक्षस-
को था तुरत भगाया।
फिर तो शान्ति चतुर्दिक छाई-
सबका मन मुस्काया ॥

सबने खुशी मनाई मन में-
नयी लहर लहराई।
सबने प्रभु के विमल गुणों की-
कीर्ति समुज्ज्वल गाई ॥

× × ×

प्रभु के धैर्य-ध्यान की गाथा-
स्वयं इन्द्र थे गाते।
इन्द्र पुरी की देव-सभा में-
सबको स्वयं सुनाते ॥

सुनकर संगम देव परीक्षा-
प्रभु की लेने आया।
विकट पिशाची रूप वरन कर-
ऊधम खूब मचाया ॥

व्याघ्र-सर्प-बिच्छू तक बन कर-
उनको खूब डराया।
नयी अप्सराओं को लाकर-
मन भर उन्हें लुभाया॥

लेकिन इन उपसर्गों से भी-
भगवान् तनिक न डोले।
सब प्रहार सहते थे निर्भय-
शान्त - विशुद्ध - अबोले॥

× × ×

ऐसे ही छम्माणि गाँव में-
भगवान स्वयं पधारे।
ध्यान लगा वे क्षय करते थे-
पूर्व कर्म को सारे॥

कायोत्सर्ग ध्यान में थे जब-
कोई ग्वाला आया।
'इन्हें देखते रहना'—कह कर-
बैल उन्हें दिखलाया॥

कुछ क्षण बाद वहाँ जब आया-
देखा बैल नहीं थे।
कौन बताता, बैल वहाँ से-
भागे अभी कहीं थे।।

उसको क्रोध जगा वह प्रभु को-
मन-ही-मन धिक्कारा।
कठिन काठ की कील श्रवण में-
ठोंकी, वह हत्यारा।।

फिर भी निश्चल ध्यान लीन प्रभु-
डिगे न अपने व्रत से।
रहे अचल ध्यानस्थ अखंडित-
पुण्य-सिन्धु शाश्वत से।।

कुछ दिन बीते, खरक वैद्य ने-
उनका शल्य निकाला।
पाप-कर्म के क्षय का अन्तिम-
पाप भस्म कर डाला।।

× × ×

ऐसे ही जब श्रावस्ती में-
महावीर थे आये।
गोशालक ने अग्नि-शूल थे-
- उन पर तान चलाये॥

गोशालक खुद कहता, मैं ही-
तीर्थंकर हूँ जग में।
कोई बाधा नहीं कहीं है-
मेरे जीवन-मग में॥

प्रभु ने उसकी सारी गति-मति-
क्षण भर में पहचानी।
मेरा धर्म-शिष्य था, लेकिन-
अब भी है अज्ञानी॥

सुनकर गोशालक चिल्लाया-
अभी भस्म कर दूंगा।
अग्नि-शूल यह तेरी खातिर-
अभी तुरत मैं लूंगा॥

कह कर उसने तेजो लेह्या-
छोड़ी मुँह बिचका के।
लेकिन है आश्चर्य; मरा खुद-
अपना काल बुला के॥

कर प्रदक्षिणा अग्नि-शूल ने-
देखा प्रभु को मन से।
किन्तु जलाया गोशालक को-
उसके अशुभ लगन से॥

प्रभु के सारे पाप पूर्व के-
क्षय निश्चय हो आये।
ध्यानलीन वे परमावस्था-
में थे दृष्टि गड़ाये॥

जग का हो कल्याण निरंतर-
ध्यान लगाये रहते।
ज्ञानामृत की वर्षा होती-
जब भी वे कुछ कहते॥

लोकोत्तर कल्याण सृष्टि का-
उनका परम नियम है।
वीतराग के पथ में तिल भर-
नहीं कहीं अब तम है॥

चतुर्दश सर्ग

दीर्घ तपस्वी महावीर ने-
नूतन ज्योति जगाई।
भव का शाश्वत हित हो जिसमें-
ऐसी राह दिखाई॥

तप से तेजोमय जीवन की-
नयी शिखा थी जगती।
नयी सिद्धि की आभा तन पर-
प्रतिदिन रही दमकती॥

एक समय वे पाँच मास-
पच्चीस दिनों का व्रत ले।
अभिग्रह के नव कठिन पथ पर-
साधन में ही रत थे॥

द्रव्य, क्षेत्र औ' काल-भाव का-
पालन नियम कठिन था।
परम सिद्धि के तपोतेज के-
साधन का ही दिन था॥

ऐसे ही क्षण चंदन बाला-
के उड़द के बकले।
खुले सूप के कोने से ही-
अपने हाथों में ले॥

ग्रहण किया था अभिग्रह से सब-
दान विभव सुखदाता।
महावीर तीर्थंकर स्वामी-
भूतल के थे त्राता॥

चम्पापति राजा की पुत्री-
थी वह चंदन बाला।
पापोदय के कारण जीती-
पीकर विष का प्याला॥

बिकना उसे पड़ा था अपने-
चम्पापति के घर से।
सेठ धनावह के घर आकर-
रहती थी वह डर से॥

इसकी पत्नी मूला उससे-
बेहद ईर्ष्या करती।
उसके सिर पर बड़ी लांछना-
दिन प्रतिदिन थी धरती॥

प्रभु के स्वीकृत अभिग्रह सारे-
पूर्ण यहीं थे होते।
सती पवित्र हुई थी चंदन-
मन को धोते - धोते॥

विपद अनेकों जीवन में थी-
विकट रूप धर आई।
लेकिन बाला रही धैर्य से-
कभी नहीं घबड़ाई॥

तलघर में मूला ने डाला-
कष्ट अनेकों देकर।
किन्तु आज चन्दन थी दर पर-
प्रभु की भिक्षा लेकर।

× × ×

प्रभु तो कठिन तपस्या की ही
मूर्ति स्वयं थे भू पर।
कुछ भी शेष अशेष नहीं था-
उनके पग के ऊपर॥

सभी शुभाशुभ कर्मों का क्षय-
तप से स्वयं किया था।
संयम से तप-ध्यान प्रकाशित-
केवल ज्ञान लिया था॥

जो उपसर्ग मिले थे पथ में-
जो भी संकट आये।
धैर्य - तपस्या - समतापूर्वक-
सबको सरल बनाये॥

दमित किया था राग-क्रोध-मद-
लोभ हृदय का सारा।
वीतराग नव ज्योति भुवन के-
भव का पुण्य - सहारा॥

पंचोदश सर्ग

सभी तरह परिपुष्ट हुए प्रभु-
तप के तेज प्रखर से।
दीप्त भुवन में हुई चेतना-
पावन पुण्य प्रहर से॥

सकल सृष्टि की पूर्ण व्यवस्था-
का जब ज्ञान समाया।
होकर वे अरिहंत जगत को-
शुद्ध ज्ञान समझाया॥

कुछ भी दृश्य अदृश्य नहीं था-
उनके दृग के आगे।
भव का विभव सभी सम्भव था-
लेकिन सब थे त्यागे॥

मूर्त-अमूर्त नहीं था कुछ भी-
तीनों काल प्रकट थे।
उग्र-प्रचंड तपस्या उनकी-
तप के दाह विकट थे॥

उनके केवल ज्ञान-प्राप्ति से-
इन्द्रासन तक डोले।
"तुरत रचाएँ" समवसरण हम-
देव यही थे बोले॥

इन्द्रलोक में सभा जुटाकर-
तीर्थंकर को लाये।
पहले प्रवचन उसी सभा में-
प्रभु ने उन्हें सुनाये॥

चलकर पावन पावापुर में
तीर्थंकर हैं आते।
देव यहाँ पर सभा दूसरी-
आकर तुरत लगाते॥

आद्य धर्म का बोध दिया था-
महावीर ने उस क्षण।
पुलकित सुनकर वहाँ हुआ था
देवों का समवसरण॥

× × ×

पावापुर में लगा हुआ था-
विद्वत् जन का मेला।
इन्द्रभूति-से ब्राह्मण अपना
दिखा रहे थे खेला॥

सुना कि कोई महावीर हैं-
तीर्थंकर बन आए।
तपोनिष्ठ सर्वज्ञ, ज्ञान के
दीपक नए जलाए॥

सुनकर उनके अहं भाव को-
गहरी चोट लगी थी।
उनके मन में कोई भीषण-
पातक खोट जगी थी॥

शास्त्रार्थ वे करने आये-
उस क्षण भरी सभा में।
आकर लेकिन लगे डूबने-
उनकी ज्ञान विभा में॥

महावीर ने कहा कि आत्मा-
अन्तस्तत्त्व प्रबल है।
शेष सभी कुछ द्रव्य, सृष्टि में-
मन से बड़ा निबल है॥

किन्तु स्वरूप-दृष्टि जब जगती-
एक सभी लगती है।
जड़-जंगम में भेद न रहता-
प्रीति अचल पगती है॥

काम-क्रोध सब जड़ पदार्थ हैं-
उससे भिन्न जगत में।
आत्मलीन ही रहता केवल-
भाषित ज्ञान सतत् में॥

अन्तर में ही मोक्ष और बन्धन-
का द्वार छिपा है।
अपने हाथों ही मंगल औं-
सब संहार छिपा है॥

जो विज्ञाता वह ही आत्मा-
आत्मा ही विज्ञाता।
शुद्ध ज्ञानमय दर्शन से यह-
तत्त्व मनुज है पाता॥

आत्मा में जो लीन वही तो-
सम्यक दृष्टि कहाता।
वही मनुज करतब से अपने-
परमात्मा बन जाता॥

आत्मा का कुछ नाश न होता-
यह ही है अविनाशी।
परम शुद्ध आत्मा रहती है-
ज्ञान-सुधा की प्यासी॥

सुनकर इन्द्रभूति के मन में-
प्रेम उमड़ भर आया।
झट से उठकर प्रभु के पग में-
उसने शीश नवाया॥

मिटी सभी शंकाएँ मन की-
कोई द्वन्द्व नहीं था।
धुला वही क्षण भर में सारा-
जो भी कलुष कहीं था॥

अपने सब शिष्यों के संग ही-
दीक्षा प्रभु से लेकर-
इन्द्रभूति भी हुआ विश्व में-
पुण्य लोक का सहचर ॥

प्रभु ने फिर विचरण कर जग में-
ज्ञान-किरण बिखराई।
घने तिमिर में पड़े मनुज को-
सच्ची राह बताई ॥

पूर्ण बहत्तर वर्ष हुए जब-
पावापुर में आ के।
देश-देश के ज्ञान-पिपासु-
जन को पास बिठा के ॥

प्रभु ने अन्तिम दिव्य देशना-
सबको वहाँ सुनाई।
प्राणिमात्र के हित की सारी-
बातें वहाँ बताई ॥

उर्ध्वश्वास जग आया सहसा
उस अमर्त्य के मन में।
ज्योति-ज्योति से मिली अकम्पित-
निर्मल मर्त्य भुवन में॥

उर्ध्वाकाश हुए वे भव के-
देह-गेह से ऊपर।
लेकिन भास्वर ज्ञान-ज्योति वह-
सदा रहेगी भू पर॥

षष्ठोदश सर्ग

भाव-ज्योति का अस्त हुआ पर-
द्रव्य ज्योति जग आये।
दीपोत्सव हो उठे, सबों ने-
नव - नव दीप जलाये॥

अन्तिम था कल्याणक उत्संव-
नई लहर लहराई।
इन्द्रादिक देवों ने मिलकर-
प्रभु की चिता सजाई॥

क्षीर सिन्धु के जल से प्रभु का-
शुभ अभिषेक कराया।
हरि चन्दन का लेप लगाकर-
रेशम वस्त्र चढ़ाया॥

स्वर्ण-रत्न के मुकुट और-
आभूषण उन्हें पिन्हाए।
देवों की निर्मित शिबिका पर-
प्रभु को ला बैठाए॥

सब देव-मनुज मिल शिबिका को
सादर वहाँ उठाया।
शोकाकुल से अश्रु-भरे वे-
चिता जलाने आए॥

पूर्ण हुई जब सारी विधियाँ-
चिता लहक लहराई।
देवों ने फिर उनकी महिमा-
सबको वहाँ सुनाई॥

× × ×

तीर्थंकर के ज्येष्ठ शिष्य थे-
गौतम परम तपस्वी।
ज्ञान - साधना - पुष्ट हृदय से-
दृढ़ चैतन्य मनस्वी॥

अडिग स्नेह था प्रभु पर इनको-
थे अखण्ड विश्वासी।
सदा श्रवण करते थे जैसे-
मुग्ध चातकी प्यासी॥

यही स्नेह तो परम सिद्धि में-
विघ्न स्वरूप बना था।
उनकी निर्मल आत्मोन्नति में-
बाधा बना तना था॥

प्रभु ने देखा, इस बाधा को-
आज तोड़ना होगा।
इसके मन को आत्म-ज्योति से-
त्वरित तोड़ना होगा।।

जिस दिन था निर्वाण, उन्होंने-
उनको पास बुलाया।
धीर भाव से गौतम को फिर-
अपने पास बिठाया।।

कहा कि गौतम पास गाँव में-
अभी तुरत ही जाओ।
वहाँ देव शर्मा ब्राह्मण को-
तुम प्रतिबोध सुनाओ।।

आज्ञापालक गौतम तत्क्षण-
दूर वहाँ से आए।
जाकर ब्राह्मण को फिर गुरु का-
सब प्रतिबोध सुनाए।।

चले वहाँ पर पथ पर अपने-
धीर बनाए मन को।
गुरु के पावन देह त्याग की-
खबर मिली तब उनको॥

लगा कि जैसे वज्र गिरा हो-
फूट-फूट कर रोये।
गुरु की स्मृति में आँसू-जल से
मन का कल्मष धोये॥

करुण विलाप किया फिर क्षण-क्षण-
प्रभु का नाम सुनाकर।
मुझको ऐसे छोड़ दिया क्यों-
आज यहाँ पर गुरुवर॥

सहसा लगा कि मन में जैसे-
ज्ञान उभर कुछ आया।
तात्विक बोध हृदय में निर्मल-
फूल सदृश मुस्काया॥

समझ गए, निर्मोही का मन-
मोह घिरा क्यों होगा।
मोह तिमिर है, उससे वेष्टित-
ज्ञान शिरा क्यों होगा॥

एक-पक्ष इस स्नेह प्रबल को-
मन-ही-मन धिक्कारा।
दृग से गुरु का रूप मनोहर-
मन में तुरत उतारा॥

लगा कि जैसे दिव्य मूर्ति-
भगवान् स्वयं हैं आए।
अपनी दिव्य प्रभा से भू पर-
नव-नव ज्योति जगाए॥

परम विरागी थे संन्यासी
सब कुछ क्षण में पाए।
केवल ज्ञान मिला, तब भव में-
प्रभु की महिमा गाए॥

महावीर तीर्थंकर जय-जय-
जय-जय ज्ञान-विधाता।
जय हे, कठिन तपस्या भू की-
जय हे जग के त्राता॥

परम सिद्धि के दायक जय हे-
परम ज्ञान-वैरागी।
जय हे भव की सकल सिद्धियाँ
जय हे निश्चल त्यागी॥

जय हे ज्ञान समन्वित जग के-
ज्योति-शिखर अधिवासी।
जय हे आत्मोन्नति के धारक-
जय अखण्ड विश्वासी॥

जय हे मानव-गुण-गरिमा के-
दिव्य शिखर अभिमानी।
जय हे तप:पूत नर पावन-
परम ज्ञान के ज्ञानी॥

जब तक सूरज-चाँद रहेगा
तेरी शिखा जगेगी।
तेरे पग की धूलि निरन्तर-
सृष्टि शीश पर लेगी।।

□□